JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिन्दी दलित नाटक और मोहन दास नैमिशराय के नाटकों का मूल्यांकन

निर्देशक :
डॉ. गोविन्द प्रसाद अहिरवार
सह प्राध्यापक
हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र ज्ञानचन्द्र श्रीवास्तव शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय दमोह (म0प्र0)

शोद्यार्थी :
चतुरेश अहिरवार
हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र ज्ञानचन्द्र श्रीवास्तव शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय दमोह (म0प्र0)

शारांश

साहित्य जीवन के विविध संबंधों की चेतनामयी अभिव्यक्ति है। यही मानव सम्बन्ध विश्व दृष्टि का निर्माण करते हैं। साहित्य वर्ग एवं युग सापेक्ष होता है। साहित्य में सामाजिक यथार्थ के प्रतिबिम्ब पर बल देते हुए कहते हैं कि सच्चा साहित्य जनता को मुक्ति पथ की ओर अग्रसर करता है मानव का मानसिक परिष्कार कर उसे क्रान्ति पथ की ओर मोड़ता है । लेखक का दायित्व जनता

का अभ्युत्थान देखना और उसे शोषण से मुक्ति दिलाना है। साहित्यकार समाज का जागरूक प्रहरी होता है, वह समाज में ही जीता है और उसकी सम्पूर्ण संभावनाएँ सामाजिक परिवेश में ही बनती बिगड़ती हैं। वह जीवन संघर्षो का सहज या परोक्ष चित्रण अपने साहित्य में करता है।

शोध–प्रबंध संघर्ष चेतना के विभिन्न आयामों से प्रस्तुत करता है जो हिंदुत्वी समाज में जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र इत्यादि विभिन्न प्रश्नों से गुजरते हुए व्यक्ति की अस्मिता को तार–तार करते हैं । यह जातीय मानसिकता विखंडित क्यों नहीं हो रही है? इसके लिए व्यक्ति नहीं, अपितु वे जिस सांस्कृतिक माहौल में रहते है वह जिम्मेदार है। क्योंकि उसमें व्यक्ति की अपनी कीमत नहीं है बल्कि जाति उसकी कीमत निर्धारित करती है । भारतीय समाज में यह बहुत बड़ा संघर्ष है इस पर विजय पाए बिना समानता व बंधुता की स्थापना सदा संदिग्ध बनी रहेगी।

वर्तमान में दलित साहित्य निरंतर गतिशील और इसमें लेखकीय मानसिकता का विस्तार करते हुए इसके अवरोधों को उखाड़ फेंकने की चेष्टा प्रस्तुत की है। वर्णवादी–जातिवादी मानसिकता को तार्किकता पर कसकर भेदभाव के कुरुप मुखौटों को उतारने की भरपूर कोशिश की है जिससे आशा की नई किरणें उगी हैं। दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से

दलितों के प्रति घृणास्पद पूर्वाग्रहों को तथा उनके विकास में बाधक बनी विचारधारा को गहराई से समझकर अभिव्यक्त किया। इन्होंने समाज की दरिद्रता, अस्पृश्यता से उत्पन्न पीड़ा, अज्ञानता, अंधश्रद्धा, सांस्कृतिक विकृति, पारिवारिक जीवन के तनाव तथा जातीय भेदभाव से छटपटाते दलितों को संघर्ष चेतना के द्वारा मुक्ति का संदेश दिया है। दलित साहित्यकारों में सशक्त हस्ताक्षर मोहनदास नमिशराय ने अपने साहित्य में जीवन संघर्षों को सिद्ध ही नहीं किया है, बल्कि सरंचनागत विषमता पर चोट भी की है। इसमें दो राय नहीं है कि नैमिशराय जी का साहित्य दलितों की आवाज बन कर इन्हें इनकी पहचान दिलाने के लिए प्रतिबद्ध है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से विभिन्न प्रताड़नाओं, निषेधों के बीच दलितों के जिंदा रहने की जद्दोजहद को बखूबी प्रस्तुत किया है। दलित परिवेश को जिस सूक्ष्मता से लेखक ने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है, वह सचमुच विचलित करने वाला है।

की वर्ड :

दलित, साहित्य, अभिव्यक्ति, विश्व, दृष्टि, वर्ग, युग, सापेक्ष, हिन्दुवी समाज आदि धर्म क्षेत्र इत्यादि।

प्रस्तावना :–

दुनिया की कोई भी चीज स्थिर नहीं है, यहाँ तक कि साहित्य भी स्थिर नहीं है। हिन्दी मैं दलित साहित्य दिन प्रतिदिन करवट ले रहा है। दलित लेखक, साहित्यकार एवं पत्रकार अपनी अभिव्यक्ति को नया स्वरूप देने में तत्पर हैं। दलित साहित्यकारों ने केवल कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक एवं आत्मकथाएं ही नहीं लिखी बल्कि इतिहास व दलित महापुरुषों पर भी जमकर लिखा । परिणाम यह हुआ कि जिस दलित पात्र को गैर दलित लेखकों/साहित्यकारों/ इतिहासकारों/पत्रकारों ने दबा दिया था वह भी हाशिए से शीर्ष पर आ गया। अरुण शौरी एंड कंपनी ने जो आरोप बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर पर लगाए उनका बड़ा सटीक उत्तर पुस्तक के रूप में दलित रचनाकारों ने दिया । अगर हम हिंदी दलित लेखकोंध्कवियों तथा नाट्यकारों के द्वारा लिखी जा रही पुस्तकों की बात करें तो दलित साहित्य की विभिन्न विषयों में प्रकाशित पुस्तकों की संख्या पाँच हजार को पार कर गई है। इनमें अकेले नैमिशराय जी की पुस्तकों की संख्या पचास के लगभग है। आज बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर पर ही हिन्दी में एक हजार से अधिक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

दरअसल 28 अप्रैल, 1994 को लोकायन की तरफ से वरिष्ठ साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय ने गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली में दलित साहित्य के मार्ग में आने वाली बाधा और संभावनाएं विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया था। तब गैर दलित माहित्यकारों के स्वर भी एक मंच पर सुनने को मिले थे। इसके बाद 14 मई, 1994 को जामिया नगर स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज में हिन्दो में दलित साहित्य विषय को लेकर गोष्ठी हुई। 4 जून, 1994 को दिल्ली के मंडोली गांव में भी दलित साहित्य पर ही एक संगोष्ठी ह्ई। तीनों ही संगोष्ठियों के सूत्र– धार मोहनदास नैमिशराय रहे। इन संगोष्ठियों में गैर दलितों के द्वारा दलित साहित्य को स्वीकारने की कम नकारने की ज्यादा चर्चा हुई। 18 और 25 जनवरी, 1997 को राष्ट्रीय सहारा ने डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन जी के सहयोग से हस्तक्षेप क दो अंकों का प्रकाशन किया। इन अंकों में दलित साहित्य की अवधारणा, दलित लेखकों के साक्षात्कार और उनकी उपलब्धियों का विस्तार से विवरण दिया गया। इस तरह लेखन पठन और नमीक्षात्मक प्रक्रिया की कश्मकश में दलित विमर्श तेजी से आगे वातानुकूलित कमरों में बैठ कर चलाई इसलिए उनका यथार्थवादी चिंतन न उभर बढ़ा। सच बात तो यह थी कि गैर दलितों ने दलितों पर जब भी कलम चलाई की भोगी हुई पीड़ा साहित्य के रूप में मुखरित हुई। ऐसी

स्थिति में सहानुभूति व कर काल्पनिक चिंतन वह भी एक तरफा मुख्य रूप से सामने आया। जबकि दलितों स्वानुभूति तथा दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र के मुद्दे विशेष रूप से उभरे, जिनका दलित साहित्यकारों ने बड़ी बेबाकी से उत्तर दिया ।

जैसे–जैसे दलित साहित्य की श्रृंखला बढ़ती गई ठीक वैसे–वैसे महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में सेमीनार होने लगे। कहीं सवर्ण लखक एवं अध्यापकों ने दलित साहित्य को लेकर मंच लगाए तो कहीं दलित लेखकों ने । दलित साहित्यकार अपने मंचों पर तो दहाड़े ही सवर्णो द्वारा लगाये गये मंचों पर भी जमकर बरसे। वाराणसी में सदानंद शाही ने दलित साहित्य और प्रेमचंद को लेकर तीन दिवसीय सेमीनार किया, तब मोहनदास नैमिशराय जी ने ऐसी बेबाकी से अपनी बात कही कि प्रोफेसर नामवर सिंह तिलमिला उठे। बाद के दौर में डॉ. धर्मवीर ने कबीर की नीली आंखें तथा सामंतों के मुंशी प्रेमचंद जैसी पुस्तकें लिखकर हिंदी राज्यों में मैंनेजर पांडे जैसे प्रोफेसर को हकबका कर दिया। हिन्दी में जो दलित साहित्यकार अंगुलियों पर गिने जाते थे अब वे सैंकड़ों में गिने जाने लगे। दलित साहित्यकारों की सूची में मोहनदास नैमिशराय जी का नाम शीर्ष पर लिखा जाने लगा । शीर्ष पर लिखे जाने के कई कारण हो सकते हैं पर मैं तो यही कहूँगा कि चौबीस घंटे चिंतन, मनन

करने एवं लिखने वाले मोहनदास नैमिशराय देश के एक मात्र दलित समाज के कलम के सिपाही हैं। ये हर समय दलित समाज की सीमा पर खड़े दिखाई देते है।

हिन्दी दलित नाटक और मोहनदास नैमिशराय के नाटकों का मूल्यांकन

वर्तमान समाज को साहित्य, संस्कृति एवं कला का दौर कहें तो अतिश्योक्ति न होगी। टेलीविजन सीरियल ने तो खास और आम सभी को बदल दिया है। नाटक कला तो तेजी के साथ समाज में उभरी है। जिसने विशेष रूप से आम लोगों को उद्वेलित किया है, और आंदोलन से जुड़ने के लिए प्रेरित किया है। दलित साहित्य में नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है

प्रसिद्ध नाट्यकार बनार्ड शा ने एक बार नाट्कों की उत्पत्ति के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा, नाट्क हमारी दो उद्गम प्रवृत्तियों के साथ पैदा हुआ है। नृत्य देखने की प्रवृत्ति और कहानी सुनने की प्रवृत्ति।[1] हिन्दी में नाटक का लम्बा इतिहास रहा है। यहाँ के रंग मंडल के अलग–अलग रंग हुआ करते थे। इनमें वीर रस, श्रृंगार रस एवं हास्यों की अधिकता रहती थी। हालांकि कुछ नाटक परिषदों तथा संस्थाओं के द्वारा पारसी कंपनियों के बाजारूपन के खिलाफ सुरुचि की रक्षा और प्रतिष्ठा हेतु कोशिशें जारी रहीं,

पर तत्कालीन समय में औसत नाटकों के स्वभाव का अगर गहराई से अध्ययन किया जाए तो उनका उद्देश्य या तो हंसना—हंसाना या फिर अश्लील सवादों के माध्यम से अभिजात वर्ग का मनोरंजन करना था। इसके अलावा कुछ नाटकों पर धर्म, संस्कृति, इतिहास के साथ देश—प्रेम का दबाव भी देखा जा सकता है।[2]

नाटकों की प्रस्तुति राजा—महाराजाओं, नवाबों के अतिरिक्त जमींदारों के मनोरंजन के लिए हुआ करती थी। ये अपनी नीतियों के अलावा मनोरंजन के लिए नाटयकारों को प्रोत्साहन करते थे। कबीर चौरा में नाट्यशाला का निर्माण करने वाले स्वयं भारतेन्दु परिवार नगर के बड़े रईस थे। खास लोग नाट्यकारों को सहयोग भी दिया करते थे। दलित नाटकों के संबंध में ऐसा नहीं है। गांव में कोई खुला स्थान लिया जाता था। उसी स्थान पर तख्त या दरियां बिछा कर नाटक की शुरूआत होती थी। उत्तरी भारत में लोकनाट्य बहुत पहले से होते रहे हैं। जहाँ तक हिन्दी लोक—नाट्य का प्रश्न है तो उत्तर प्रदेश के हापुड निवासी सेतूसिंह ने वर्ष 1821 में सपेरे नामक नाटक लिखा। इनके बाद दलित समाज के लोक—नाट्यकारों की प्रथम श्रेणी में बक्शीदास और झन्डूदास आते हैं।[3] चढ़त तथा खेड़िया भांड—भंडला, बहुरूपिया, स्वांग, भारतीय लोक—नाट्यों में जिस वीर कथात्मक लोकनाट्य ने महती भूमिका का

निर्वहन किया उसमें आल्हा ऊदल को प्रमुख लोक नाट्य कहा जा सकता है। जहाँ लोकनाट्य आल्हा का मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश की ग्रामीण जनता में शौर्य और पराक्रम का मंत्र फूकता रहा, वहीं पर बिहार के मिथिला क्षेत्र में राजा सलहेस जो कि वीर कथात्मक लोकनाट्य का प्रमुख रूप है। इस तरह देखा जाए तो लोक–नाट्य के दलित समाज से बहुत नजदीक के रिश्ते रहे।[4] उनक सुख–दुख संवेदनाएं, तथा भाषा शैली का सहजता से लोकनाटय में प्रतिनिधित्व होता हैं लोकगीत हों या लोक–नाट्य सब दलित समाज की ही निधि है।[5] लोक–नाट्यों में पर्व निर्मित अवधारणाओं का प्रचुरता में समावेश रहा है।

हम यह कह सकते हैं कि लोक नाट्य में व्यक्तिपरक न होकर समाजपरक अधिक प्रदर्शित होता है। इन पर सवर्ण संस्कृति भी अधिक हावी रही ह। इसलिए दलित समाज की संस्कृति अकसर दब सी जाती है। महाराष्ट्र में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार को प्रचारित करने में जिस साहित्यिक विधा का प्रयोग हुआ वह जलसा या तमाशा थी। डॉ. चन्द्र कुमार वरठे के अनुसार तमाशा चूंकि दलितों ओर विशेषतः महाराष्ट्र के महारों क लहू में रचा–बसा है इसलिए इसी विधा को अपनाया गया। इन के विषय में समाज सुधार, दलितों

को राजनीतिक अधिकार और समानता दिलाने के साथ अम्बेडकर का कीर्तिमान भी होता था ।

दलित समाज के प्रथम नाटककार के रूप में किसन फागू बनसोडे का नाम •लिया जाता है। इनके संत चोखामेला के जीवन पर आधारित नाटक का लेखन काल वर्ष 1924 के इर्द–गिर्द माना जाता है। यह नाटक एक बार नहीं बल्कि अनेक बार खेला गया। सही मायने में मुक्त रंगमंच का आविष्कार तत्कालीन जलासाकारों ने ही किया था ।

भारत में रेडियो के आने से रेडियो नाटक परंपरा विकसित हुई। रेडियो नाटकों की जहां तक विषय वस्तु की बात है, वह चाहे राष्ट्रीय चेतना प्रधान नाटक हो या सांस्कृतिक चेतना युक्त नाटक उनमें इतिहास, धर्म, संस्कृति, के सवाल अधिक उठाए जाते थे । "स्वयं नाटक लिखने वालों से लेकर प्रस्तुति देने वालों पर अधिकांश प्रभाव सनातनी लोगों का ही था। इस कारण विजय दशमी हो या दीपावली, जन्माष्टमी, रामनवीं आदि अवसरों पर ही नाट्य प्रसारित किये जाते थे।[6] बौद्ध कालीन नाटकों को भी ब्राह्मणी दृष्टिकोण से चित्रित किया जाता था।[7]

12 जनवरी,1999 से 13 जुलाई 1981 के दरम्यान का यदि हम रेडियो नाटकों का अवलोकन करे तो इस बारे में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं कि

रेडियो नाटकों की हमें लंबी सूची मिलती है जिनमें 197 नाटकों साथ उनके लेखको के नाम, प्रसारण तिथि तथा प्राप्ति स्थान का ब्यौरा है। इसमें कहीं दलित नाट्यकार का ब्यौरा नहीं मिलता। गिरीराज किशोर के नाटक घास का घोड़ा में भारतीय समाज के भीतर जातिभेद को अवश्य दिखाया गया है। शिवप्रसन्न दास के एकांकी में दलित समस्याओं के निदान के लिए सुधारात्मक कदम उठाया गया है। विष्णु प्रभाकर के नाटकों में दलित सवालों को उठाया गया है। दरारो के द्वीप के लोग जाति के द्वीप में बंद हैं। रात चांद और कुहरे में भी जाति समस्या को कोहरा माना गया है। पर और किरण में लेखक जाति समस्या को फिर से उठाता है।[8] इसके अलावा कहीं भी न दलित समस्या का चित्रण है और न समाधान का प्रयास । नैमिशराय जी का मानना है कि सवर्णों की दुनिया के अलग रंग हैं । उनमें जाति का सबसे बड़ा रंग है। साहित्य भी उसका गवाह है। इन सबके तहत ही सवर्णों की रचनाधर्मिता फलती—फूलती रही है।

लोक—नाट्यों की श्रृंखला में बिहार के भिखारी ठाकुर का जिक्र जरूर करना चाहिए। इन्होंने एक नही कई नाटक एवं गीत लिखे हैं जिनमें नशाखोरी के दुष्परिणाम, धार्मिक, आडम्बर, रूढ़िवादिता, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह आदि समस्याओं को चित्रित किया है। भिखारी ठाकुर के नाटकों में कथ्य और शिल्प

दोनों ही स्तरों पर हम संस्कृति के इस गतिमान और परिवर्तनशील पहल से साक्षात्कार करते हैं।[9] डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त ने उन्हें बिहार के रंगमंच को पुनरूजीवित करने वाला कहा है पर उन्होंने दलित सवालों को अपने नाटकों से दूर रखा।[10] उन्होंने समस्या प्रधान नाटक अवश्य लिखे मगर समस्या निदान संबंधी विचार न दे सके। पात्रों के की तो बात ही छोड़िए। भिखारी दास ठाकुर का सूत्रधार हरिकीर्तन शैली में पहले तो गांव में पूज्य सभी देवी–देवताओं की स्तुति करता है फिर समाज–सुधार की मौखिक बात।

बद्रीनारायण के अनुसार जब भोजपुरी क्षेत्र में निरक्षर, उत्पीड़ितों की बात करते हैं तो यह अछूत शब्द के संदर्भ में सभी प्रवृतियों को उजागर करने में असमर्थ प्रतीत होता है। यहाँ दलित वर्गों की प्रतिक्रिया की प्रवृति सवर्ण प्रवृति से भिन्न रही है। सवर्ण वर्गों की प्रतिक्रिया में जहाँ अति आत्मविश्वास, उछाह, गर्वबोध, उन्माद के के तत्व तत्व पाये जाते हैं वहीं दलित वर्गों के प्राप्त साहित्य में करुणा, दारूण, दैन्य, मिलते हैं।[11] बद्रीनारायण का मानना है कि वे करुणा एवं दैन्य समाजिक विभेद के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः उनमें विभेद और विभेदों के मध्य द्वंद की ध्वनियाँ सदैव गूंजती रहती हैं। इस तरह की करुणा एवं दैन्य निम्नवर्गीय चेतना में निहित प्रतिरोध को वे प्रथम चरण बतलाते हैं।[12]

विशेष रूप से उत्तरी भारत में देखा जाए तो नाटक के माध्यम से स्वामी अछूतानंद हरिहर दलितों के सवालों का जवाब तलाशते नजर आते हैं। सवर्ण जाति के अन्याय और अत्याचारों को विषय वस्तु मान कर रामराज्य नाटक लिखा। नाटक का मंचन आदि हिंदू आंदोलन के सम्मेलनों के बाद रात्रि के समय हजारों, दर्शक के समक्ष किया जाता था।[13] कल्पना और इतिहास का सुन्दर सामंजस्य है। वहीं माता प्रसाद ने इस नाटक के माध्यम से झलकारी बाई के अतुलनीय शौर्य झलकारी बाई एक ऐतिहासिक पात्र है जो कोली जाति यानी दलित है। इनका कहना एवं बलिदान की कहानी कह कर उसके चरित्र से पाठकों का परिचय कराया है। है कि साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक आम लोगों को अधिक ग्राह्य है इसलिए इसकी भाषा जनसारधारण द्वारा समझने योग्य लिखी गई।

आजकल नाटकों के दृश्य आकर्षक और वैज्ञानिक सुविधाओं से युक्त होते हैं। मैंने इसे देहाती परिवेश में जहाँ सुविधाएं नहीं हैं इस दृष्टि से लिखा गया है। मेरा विश्वास है कि इस नाटक द्वारा दलित समाज को प्रेरणा मिलेगी और उनके भीतर से हीनता की भावना का निवारण होगा।[14] इसके अलावा माता प्रसाद के तीन और नाटक हिन्दी दलित साहित्य में पढ़ने को मिलते हैं। धर्म के नाम पर धोखा, अछूत का बेटा, प्रतिशोध। डॉ. सिप्रा बैनर्जी के अनुसार धर्म

के नाम पर धोखा देने की प्रवृति को उजागर करने के लिए साथ–साथ माता प्रसाद जी ने समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों का नाटक में उल्लेख किया है। अछूत का बेटा नाटक के पात्र पंडित हरिप्रसाद के प्रतिष्ठित ब्राह्मण मंदिर के पुरोहित हैं, जो अपने ब्राह्मणत्व के वर्ग से गर्वित हैं तथा रूढ़ियों से भयंकर रूप से जकड़े हुए हैं। ग्राम के रविदासी जाति के शिवराम मंदिर में प्रवेश करने के अपराध पर पुरोहित उसको पिटवाते हैं परंतु उन्हीं की बेटी कमला इसका विरोध करती है। इधर दिल्ली में तारा चंद चौहान द्वारा गरीब की रोटी एक दलित नाटक के मंचन का विवरण हमें मिलता है। वही सुजाता सिंह ने देवदासियों के जीवन पर नाटक का मंचन किया। बिहार के मेघनाथ जमालपुरी ने नींव का पत्थर, साया और शोला लिखे एवं इनका मंचन भी देश के कई शहरों में हुआ ।

दलित थियेटर पर हमेशा से ही बादल मंडराते रहे हैं। वह इसलिए भी जब हमारे आसपास ग्लेमर युक्त फिल्म तथा दूरदर्शन श्रृंखलाएं हों तब ऐसी स्थिति में नाटक देखने की फुर्सत कौन निकाले और वह भी दलित नाटक। दलित नाटकों के मंचन की समस्या अन्य नाटकों से कहीं अधिक हैं। उसका एक कारण यह भी है कि रिहर्सल से लेकर मंचन तक के अंतिम दिनों तक दलित नाटकों पर मेहनत होती हैं फिर बड़े शहरों में प्रेक्षागृह नहीं मिलते और

छोटे शहरों में प्रेक्षागृह की व्यवस्था नहीं होती। प्रेक्षागृह मिल भी जाए तो टिकट बिक्री की समस्या। कलाकारों की समस्या तो और भी बढ़कर है। दलित सवालों को थियेटर के माध्यम से उठाना ही चुनौती से भरा कार्य ऐसी स्थिति में सूत्रधार कौन बने । जहाँ दलित अस्मिता और उधार की संस्कृति पर जिंदा रहना चाहता हो। जो अपने आससे कटकर अपने वजूद पहचान का ही संकट हो वहाँ स्वयं दलित समाज का व्यक्ति अपनी संस्कृति भूलकर को भुला देना चाहता हों।[15] उस तरह के परिवेश में दलित रंगकर्मियों के सामने समस्याएं ही समस्याएं हैं। हालांकि दलित विषय पर आज नाटक लिखना व छपना उतना बड़ा संकट नहीं है । दलित थिएटर का अर्थ सीमित नहीं है, बल्कि है तो आम आदमी के जीवन में रची–बसी एक ऐसी विधा है, जिसकी जानकारी देना संपूर्ण भारतीय समाज को जरूरी है।[16]

भारतीय समाज में कला तथा साहित्य के लिए 80 के दशक को बेहतर माना जा सकता ह। रेडियों पर विभिन्न तरह से प्रयोग होने लगे थे। उनमें नाटक एक सशक्त विधा थी। यह वह दौर था जब नैमिशराय जी पूर्ण रूप से मंचीय नाटकों के लिए समर्पित थे। एक ओर वे पत्रकारिता के क्षेत्र में अग्रसर थे तो दूसरी तरफ मंचीय नाटकों के लिए भी प्रतिबद्ध थे। वर्ष 1982 में

मोहनदास नैमिशराय जी की नियुक्ति दृश्य एवं श्रव्य निदेशालय (डीएवीपी) नई दिल्ली में डेमोंस्ट्रेटर के पद पर

उसी समय मोहनदास नैमिशराय जी के रिश्ते फिल्म, वृतचित्र, स्क्रिप्ट, टी.वी. सीरियल तथा नाटकों से बने और उन्होंने इस क्षेत्र में लिखना शुरू किया । कविता, कहानी, तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ रंगमंच में इनकी रूचि तेजी से बढ़ने लगी। यहीं से रेडियो, दूरदर्शन तथा रंगमंचीय नाटक लिखने प्रारंभ किए। यह दौर वैसे भी राजनैतिक और सामाजिक उथल–पुथल का था। दलितों में तेजी के साथ चेतना आ रही थी। स्वयं नैमिशराय जी के भीतर डॉ. अम्बेडकर का दर्शन अपनी जगह बनाने को आतुर था। नैमिशराय जी का मानना था कि रेडियो के लिए परिवार नियोजन का कार्यक्रम 'कौन कहाँ और कब' उन दिनों बारह स्टेशन से एक साथ प्रसारित होता था। इस कार्यकम की व्यवस्था मुझ पर थी।[17] उन दिनों रेडियो के अन्य कार्यक्रमों (खुशियों का आंगन, कथा पहेली, नया सवेरा और हवा महल आदि) को स्क्रिप्ट पर भी मैंने लेखन आरंभ किया ।[18] मेरे लिए यह नये तरह का कार्य था। तथा प्रिंट मीडिया से इलेक्टॉनिक मीडिया में लिखने का नया अनुभव भी। नई स्थितियाँ मेरे सामने आतो, जो मुझे चुनौती भी देती । कुल मिलाकर कहा जाए तो विराट संसार मेरे सामने खुल रहा था। जिससे नये–नये अनुभव मुझे हो रहे

थे।[19] इसी दौर में उनके संबन्ध दलित तथा सवर्ण नाट्यकारों से हुए और यह सिलसिला लगभग दो दशक तक रहा। मंडी हाउस तब नाट्य मंचों का मुख्य केन्द्र था।

इसी दौरान नैमिशराय जी ने जो रेडियो नाटक लिखे उन सबका रिकार्ड नहीं मिलता, पर जितना मिलता है। वह सब हिन्दी रेडियो नाटक के रूप में पढ़े जा सकते हैं। इस संबंध में स्वयं वे लिखते हैं कि 80 के दशक में मैंने रेडियो के लिए लगभग एक सौ स्क्रिप्ट लिखी। यह सारा लेखन मेरे पास कैसेट्स में भी था, पर आधे से अधिक सामग्री खराब हो गई थी। जिन कागजों पर स्क्रिप्ट लिखी गई थीं वे कागज भी गल गये थे। भला हो मेरे प्रिय सहयोगी रूपचन्द गौतम का, उन्होंने इन सबको प्रकाशित कराने की जिम्मेदारी ली।[20] पुस्तक हिन्दी रेडियो नाटक शीर्ष से छपी।

युवा नाट्यकार बलराम लिखते हैं कि इतिहास में भयावह से भयावह समय को पढ़ना ओर उससे भी भयावह वर्तमान को जीना उसका अनुसरण करना तथा अनुभव को अपने में पिरो कर उससे पूरी जिंदगी गढ़ने की कोशिश करना सचमुच दुरुह कार्य ह। ऐसा ही दुरुह कार्य करने की हिम्मत जुटायी नैमिशराय जी ने । उनमें मुख्य रूप से बात पक्कम–पक्की, छोटा–बड़ा, जितनी आय उतना खर्च, वर्षगांठ, शहर–शहर, गांव–गांव, जड़ी–बूटी, भीख

मांगना सामाजिक अपराध है, शराब से किनारा, स्वयं बने अपना सहारा, माँ का दूध सर्वोत्तम, दहेज बिन डोली, छोटू का दुखवा, खेल के मैदान में, अभिशाप नहीं, माँ पिलाए अपना दूध, नशे की लत, कल्पना, बचपन, तू भी जग, प्रौढ़ शिक्षा का महत्व, बाल गृह, नारी और शिक्षा, शिक्षा का महत्व, न कोई छोटा न कोई बड़ा, प्रेम भावना त्याग के बिना अधूरी, मानसिक बधिता और बचपन, शिक्षा और प्रेम, उजाला, आदि हिन्दी रेडियो नाटक कृति में नाटक हैं।

10 जून, 1983 को नया सवेरा रेडियो कार्यक्रम के अन्तर्गत छोटू का दुखवा प्रसारित हुआ। अनिल नेत्रहीन बालक होने के कारण समाज एवं परिवार से उपेक्षित है। पर अनिल को शिक्षा के प्रति लगाव है। उसकी माँ सतवन्ती नेत्रहीन स्कूल प्रवेश दिला देती है। वहाँ उसे आत्मविश्वास पैदा होता है। आत्मविश्वास ही मनुष्य के विकास का मूल कारण होता है। कहना न होगा कि छोटू का दुखवा से बात आगे और बढ़ती गई। 6 जुलाई, 1983 को नया सवेरा के अन्तर्गत अभिशाप नहीं नाटक का प्रसारण हुआ। नाटक का मुख्य पात्र महेश है। इसे समाज कल्याण विभाग में नियुक्ति मिल जाती है। दुर्घटना में उसकी दोनों टांगे कट जाती हैं। सभी के सहयोग से आर्टीफिशियल टांगे लगवा लेता है। यह समस्या महेश के जीवन में अंधेरा अवश्य लाती हैं पर महेश अपन आत्मविश्वास के कारण उस अंधेरे को उजाले में बदल देता है।

नशा एक बीमारी है। जिसकी लत लग जाए आसानी से छूटती नहीं है। छोटे–बड़े सबके सब बर्बाद हो जाते हैं। 24 अगस्त, 1983 को नया सवेरा रेडियो कार्यक्रम के अन्तर्गत माँ का दूध सर्वोत्तम नाटक प्रसारित हुआ । इस नाटक के माध्यम से नैमिशराय कहते हैं कि माँ का दूध ही सर्वोत्तम होता है ।[21]

सामाजिक बुराई, कुरीतियों आदि से बचाने के लिए नैमिशराय जी ने रेडियों के लिए बात पक्कम पक्की नामक नाटक लिखा। नाटक के पाँच दृश्य हैं। उस जनजाग्रति का माध्यम पत्र–पत्रिकाओं के अलावा रेडिया प्रमुख माध्यम था। नाटक का प्रसारण 1 जून 1984 को नया सवेरा कार्यक्रम के अंतर्गत हुआ। उस समय भारतीय समाज में बाल विवाह का सिलसिला अधिक था। बकौल बलराम बाल विवाह एक समाजिक बुराइ थी। जो समाज को अंदर ही अंदर खोखला किये जा रही थी। उसे समझाने के लिए नाटककार कठपुतलियों का सहारा लेता है। उनके पात्र हीरा की पत्नी लीना को अपने बेटे सुदेश के ब्याह की चिंता है जो कि दसवीं कक्षा में पढ़ता है। लीना के कहने पर वह पड़ौसी गांव में जाकर सुरेश के लिए रिश्ता देखने आता है। संवाद स्वाभाविक है। कठपुतली के खेल से सीख लेकर हीरा अपने पुत्र सुरेश को पढ़ाता है। उसकी बैंक में नौकरी लग जाती है। उसका विवाह एक शिक्षित लड़की से हो

जाता है। इस तरह मोहनदास नैमिशराय जी के द्वारा लिखे नाटक या स्क्रिप्ट जो भी कहें वे कैसेट्स में थे, उन्हें कागजों पर छपने का अवसर मिला। संदेश के रूप मं नैमिशराय जी का वक्तव्य बाल–विवाह नहीं बच्चों को शिक्षित करना चाहिए ऐसा प्रसारण होता है।

4 जुलाई, 1984 को नैमिशराय जी का रेडियो नाटक छोटा–बड़ा का प्रसारण था। नाटक दलित जीवन पर आधारित है। नाटक का पात्र हरिया एक दलित है। उसका पुत्र बीमार हो जाता है। वह जमींदार से आर्थिक मदद मांगता है। लेकिन जमींदार सुबह–सुबह देखकर घृणा करता है। पैसे न होने के कारण हरिया अपने पुत्र को मंदिर ले जाता है। वहाँ भी मंदिर का पुजारी भगवान के दर्शन करने नहीं देता। यहां नैमिशराय जी ने दलित स्थिति को रेडियो के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाने का प्रयास किया है। नैमिशराय जी बढ़ती जनसंख्या से अच्छी तरह से परिचित हैं । बढ़ती जनसंख्या का ही परिणाम है कि लूट–खसोट, लड़ाई–दंगे, भुखमरी, महामारी, गुंडागर्दी, भ्रष्टाचार, बलात्कार आदि में दिन प्रतिदिन इजाफा हो रहा है। प्रचार–प्रसार से परिवार नियोजन कहाँ तक चलेगा इसके लिए तो कानून बनाने की जरूरत है अगस्त, 1984 नैमिशराय जी का जितनी आय उतना खर्च प्रसारित हुआ। इस रेडियो नाटक का कथ्य परिवार नियोजन पर आधारित है। नाटक के बहाने

नैमिशराय जी का कहना है कि पुत्र के चक्कर में लोग कई बच्चों को जन्म देते हैं जिससे उनकी परवरिश नहीं हो पाती। इसलिए जितनी आमदनी है उतना ही खर्च करना चाहिए। पुत्र के चक्कर में अपने खर्च को बढ़ाना नहीं चाहिए।

4 सितम्बर, 1985 को खुशियों का आंगन रेडियो कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्षगांठ नाटक का प्रसारण हुआ। इसका कथ्य दाम्पत्य जीवन पर आधारित है। नाटक का संदेश है कि परिवार जितना छोटा होगा उतना ही समृद्धि के पथ पर अग्रसर होगा। यहाँ वे बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार को ही आगे बढ़ाते हैं। 6 अक्टूबर, 1985 को नैमिशराय का नाटक शहर–शहर गाँव–गाँव प्रसारित हुआ। नाटककार ने ग्रामीण परिवेश का चुटीले संवादों के साथ उठाया है। यहाँ नैमिशराय जी दलित साहित्य में अपनी राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक हिस्सेदारी के समर्थक हैं ताकि दलित अपनी पहचान बनाकर खड़े हो सकें। नाटककार दलितों के दृष्टिकोण से अच्छी तरह वाकिफ होने के करण दलित दृष्टि की वकालत करते हैं। 12 नवंबर, 1985 को खशियों के आंगन कार्यक्रम के अन्तर्गत जड़ी–बूटी नाटक का प्रसारण हुआ। उक्त नाटक का संदेश सीमित परिवार पर आधारित है।

18 अक्टूबर, 1984 को भीख मांगना सामाजिक अपराध है नाटक नया सवेरा रेडियो कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रसारित हुआ। नाटककार का अभिप्राय है कि भीख मांगना एक अपराध है। आर्थिक तंगी को मेहनत करके दूर करना चाहिए। यह नाटक स्त्री की अस्मिता एवं स्त्री की सशक्तिकरण से जुड़ा है। भारतीय समाज में जिस नारी को देवी, माँ आदि की संख्या देकर पूजा जाता रहा है वहीं इसकी अस्मिता को तार–तार कर दिया जाता रहा है। नैमिशराय जी पुरुषवादी मानसिकता पर चोट करते हैं। जहाँ पहले बस्ती के लोग भीख मांगते थे अब वे नाटक सुनकर मेहनत मजदूरी करने लगे हैं। महिलाएं सिलाई, कढ़ाई, बुनाई आदि काम करने लगी हैं। यानी हम यह कह सकते हैं जहाँ–जहाँ रेडियो पर नैमिशराय जी का नाटक जिस किसी ने सुना वहाँ–वहाँ सकारात्मक प्रभाव पड़ा महसूस होता है ।

18 जुलाई, 1984 को शराब से किनाराः स्वयं बने अपना सहारा नया सवेरा रेडियो कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रसारित हुआ। नशा मन तथा शरीर दोनों के लिए है। यह अपने पिता नत्थू को बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के संदेश को सुनाता है घातक है। नाटक का पात्र नत्थू शराबी है। जबकि दूसरा पुत्र अविनाश अम्बेडकरवादी तब वह शराब छोड़ने का प्रयास करता है। 7 दिसम्बर, 1984 को रेडियो कार्यक्रम नया सवेरा के अन्तर्गत बाल गृह का प्रसारण हुआ।

नाटक स्त्री श्रम पर आधारित है । लेखक ने बाल गृह के माध्यम से परिवार को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने का तरीका सुझाया है। नशे पर आधारित 13 अक्टूबर, 1983 को मोहनदास नैमिशराय का रेडियो नाटक नशे की लत नया सवेरा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रसारित हुआ। मंगल नाटक का मुख्य पात्र है। जिसका नशे के कारण एक्सीडेंट हो जाता है। डाक्टर साहब उसे समझाते हुए कहते हैं अच्छा जरा बताओ क्या तुम्हें उस भोली–भाली स्त्री का जरा भी ख्याल नही जो तुम्हारे पर निर्भर है।[22] मंगल को डाक्टर साहब की बात समझ आ जाती है। जीवन के इसी मोड़ से वह नशा करना छोड़ देता है। यही लेखक का उद्देश्य नाटक के पीछे छिपा है। 31 मई, 1984 के दिन रेडियो कार्यक्रम सवेरा के अन्तर्गत कल्पना नाटक प्रसारित हुआ।

कल्पना एक कालगर्ल है। यह रंजन से प्यार करती है। प्यार में कल्पना आत्महत्या करने की कोशिश करती है। पर रंजन उसे बचा लेता है। प्यार आत्म परीक्षण का नाटक है कल्पना । जिस समय प्रौढ़ शिक्षा का शोर हो रहा था उस समय मोहनदास नैमिशराय ने प्रौढ शिक्षा का महत्व नामक रेडियो नाटक लिखा। इसका प्रसारण 2 फरवरी, 1985 को नया सवेरा कार्यक्रम के अन्तर्गत हुआ। तू भी जग नामक नाटक के अन्तर्गत नैमिशराय मंजू के रूप में कहते हैं राजू तू भी जग। अंधरे में मत पड़ । जीवन अंधेरे से नहीं उजाले से

चलता है।[23] नाटक में बुरी संगत से निजात पाने के लिए प्रेरित किया गया है। राजू नाटक का मुख्य पात्र है। यह बुरी संगत में पड़ कर अपना अनमोल जीवन नष्ट करने पर उतारू है। इसका प्रसारण 18 जून, 1985 को नया सवेरा कार्यक्रम के अन्तर्गत हुआ।

लड़कियों को भारतीय समाज में पराया धन समझ कर शिक्षा से वंचित रखा गया है। पर यह कभी नहीं सोचा कि नारी के शिक्षित होने से दो परिवार शिक्षित होते हैं। नारी शिक्षा के महत्त्व को लेकर नैमिशराय जी ने नारी शिक्षा नामक रेडियो नाटक लिखा। इसका प्रसारण 22 दिसम्बर, 1986 को नया सवेरा कार्यक्रम के अन्तर्गत हुआ । शिक्षा के महत्त्व से जुड़ा नैमिशराय जी का दूसरा रेडियो नाटक शिक्षा का महत्व भी है। इसका प्रसारण 3 मार्च, 1984 को हवा महल कार्यक्रम के अन्तर्गत हुआ। छोटे–बड़े के भेद को स्पष्ट करते हुए नैमिशराय जी ने न कोई छोटा, न कोई बड़ा रेडियो नाटक लिखा। इसका प्रसारण 6 मई, 1986 को रेडियो कार्यक्रम कथा पहेली के अन्तर्गत हुआ।

4 अप्रैल, 1986 को रेडियो कार्यक्रम कथा पहेली के अन्तर्गत प्रेम भावना के बिना अधूरा का प्रसारण हुआ। बकल बलराम हम जिसे भविष्य कहते हैं, दरअसल वह उसके इतिहास और वर्तमान के अनुभवों के मुठभेड़ एवं साझेदारी से उपजा, रचा हुआ आने वाला समय होता है। मालवा नरेश मालवेन्द्र युद्ध में

वीरगति को प्राप्त हो गए। उनकी बहन माला सम्राट चन्द्रगुप्त से प्रेम करती थी। स्वयं चन्द्रगुप्त भी माला से प्यार करता था। उस समय चाणक्य मध्य राज्य के सलाहकार थे। जब सम्राट चन्द्रगुप्त के उपर षड़यंत्र होने का चाणक्य को पता चलता है तब नाटक में चाणक्य कहते हैं——तुम्हें अपने प्यार की कीमत चुकानी होगी। माला की सहमति होती है षड्यंत्रकारी सम्राट को समझकर उनके पलंग पर लेटी माला की हत्या कर देते हैं। संसार में प्रेमभाव से बढ़कर कुछ नहीं है। माला ने अपनी दूरदृष्टी का परिचय देने का काम किया है।

प्रेम भंवर महिला चेतना पर आधारित रेडियो नाटक है। इसका प्रसारण 15, फरवरी, 1987 को हुआ। नाटक प्रेमभावना और त्याग पर आधारित है। मानसिक वधिता एक अभिशाप है ऐसा सोच कर माता–पिता एवं संगे–संबंधी बच्चे से मोड़ लेते हैं पर यह ठीक नहीं है। ऐसा नैमिशराय सोचते हैं। नैमिशराय जी ने जीवन को विविध तरह से देखा है। जीवन यानी हर क्षेत्र में व्यक्ति दस्तक दे।

देश में बहुत सारे बच्चे मंदबुद्धि के हैं पर ऐसे बच्चे अनाथ नहीं हैं। उनके साथ अनाथों से भी बुरा व्यवहार होता है। स्वयं माता–पिता, भाई–बहन, सगे– संबंधी मंदबुद्धि के बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते ऐसा

नैमिशराय जी ने स्वयं देखा और महसूस किया है। इसलिए वे स्वयं लिखते हैं कि हम किसी न किसी रूप में मानसिक वधिता के शिकार हैं। हमारे ही बीच ऐसे अनेक लोग उक्त समस्या रहे हैं। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच दरार पैदा हो रही है। मानव समाज की संरचना प्रभावित हो रही है।[24] 11 दिसम्बर, 1987 को नया सवेरा के अन्तर्गत खेल के मैदान में प्रसारित हुआ। बच्चे का एक हाथ खराब है पर उस विकलांगता को उसने कमजोरी नहीं बनने दिया। उसी बच्चे ने खेल को जीत कर यह दिखा दिया कि विकलांग बच्चे में यदि साहस एवं लगन है तो वह भी एक दिन बड़ा काम कर सकता है। निश्चित रूप से नैमिशराय जी का यह रेडियो नाटक विकलांग बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करता है। 5 अगस्त, 1988 को रेडियो कार्यक्रम हवा महल के अन्तर्गत मानसिक वधिता और बचपन के माध्यम से माता–पिता एवं संगे संबंधियों को यह एहसास दिलाते हैं कि यह अभिशाप नहीं बल्कि एक बीमारी है। इसका प्यार रूपी इलाज से समाधान हो सकता है।

नैमिशराय जी के रेडियो नाटकों में जुल्म और अन्याय का पुरजोर विरोध है। जिन्दगी की सच्चाई व्यक्त होती है हिंसा, घृणा उन्माद के वातावरण में प्रेम का संदेश है। नाटक देखे बिना समाज पर प्रभाव नहीं पड़ता। नैमिशराय जी के नाटक जिन्दगी की सच्चाई व्यक्त होती है हिंसा, घृणा उन्माद के वातावरण

में प्रेम का संदेश आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले नाटक हैं। यानी हम नाटक देख नहीं सकते केवल सुन सकते हैं। जिनके पास रेडियो नहीं था वे नैमिशराय जी के नाटक सुन न सकें। ऐसे लोगों पर ऐसे लोगों पर प्रभाव पड़ने का तो कोई प्रश्न भी नहीं उठता। ऐसा श्रोताओं से बातचीत करने पर महसूस होता हैं। इनके नाटक कॉमडी के नाटक नहीं वरन उनमें इतनी ही है कि दर्शक मुस्करा सकें। जब हमारे घर में नैमिशराय जी के नाटकों पर घर में बातचीत होती थी तब मेरी पत्नी सावित्री गौतम जब रेडियो पर हवा महल एवं नया सवेरा पर नैमिशराय जी के नाटकों में आये संवादों को सुनकर मुस्कुराती थीं और बेटी साक्षी गौतम को बताती थी कि देखो नैमिशराय का नाटक आ रहा है। –ध्यान से सुनो। फिर संजीदगी से हम सब रेडियो के माध्यम से नैमिशराय जी के संवादों को सुनते थे।

हिन्दी रेडियों नाटकों का विशेष रूप से समाज पर सकारात्मक प्रभाव भी दिखाई देता है। नैमिशराय जी का हिन्दी रेडियों नाटक लिखने का उद्देश्य मनोरंजन के साथ–साथ संदेशात्मक रहा है। समाज में परिवर्तन चाहत ने न जाने कहाँ–कहाँ घुमा दिया है? कुल मिला कर यही कहा जा सकता है कि सभी नाटकों के कथानक श्रोताओं में रूचि पैदा करने के अलावा एक संदेश भी देते हैं।

इन सभी रेडियो स्क्रिप्ट का 80 के दशक में प्रसारण होता है। यह सभी कार्यक्रम केन्द्रीय समाज कल्याण एवं बाल विकास मंत्रालय के तहत आगे बढ़ते हैं। जेसा हमने बतलाया नैमिशराय जी इन दिनों डी.ए.वी.पी. में कार्यरत थे और यह कार्यालय पीटीआई बिल्डिंग में संसद मार्ग पर था।

इसके अलावा नैमिशराय जी ने मंचीय नाटक भी किये। हैलो कामरेड की प्रस्तुति गांधी मैमोरियल हाल, प्यारे लाल भवन, नई दिल्ली में 16 जुलाई, 1984 को सांय 6 बज कर 30 मिनट पर निदेशक अहलावत एवं लेखक एवं सह निदेशक मोहनदास नैमिशराय के द्वारा हुई। नाटक की प्रस्तुति राही कला–संगम के द्वारा एक राजनैतिक व्यंग्य के रूप में हुई। नाटक के विषय में दिनेश अहलावत कहते हैं कि हैलो कामरेड वर्तमान सामाजिक परिवेश मे सांस लेने वाले ऐसे लोगों की कहानी है जो राजनैतिक रंगमंच पर कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं। जिनके दिल और दिमाग में अभी भी जाति–पाति, उंच–नीच, छोटे–बड़े की मानसिकता कैद है। गांव हो या शहर शोषित ओर दलित अभी भी पिट रहा है। हैलो कामरेड कम्युनिष्टों के बीच दलितों की सच्ची स्थिति को उजागर करती है। नाटक के विषय मे पहले ही पत्र–पत्रिकाओं में पढ़ा जा चुका है। दिनमान ने तो मुखरता से छापा था।

इसके अलावा उनके नाटकों में अदालतनामा, क्या मुझे खरीदोगे? डेढ़ इंच मुस्कान आदि हैं। अदालतनामा आधुनिक परिवेश में बिखरते हुए मूल्यों की और संकेत करते हुए समाज को मजबूत आधार देने के लिए प्रतिबद्ध है। युवा पत्रकार और नाटककार बलराम के विचार में शायद वह कुछ जो हमने खो दिया और जीवन के मधुर पल को पकड़ने के लिए हम वंचित रह गये, अदालतनामा नाटक में पढ़ने और देखने को मिलता है।

यूं अदालतनामा नाटक की शुरूआत ही एक विस्फोट से होती है। पूर्ण स्वतंत्रता एवं अपने हक के लिए जुलूस निकाला जाता है। रामसिंह, जो स्वतंत्रता सैनानी हैं, उसकी बेटी अनुराधा इस जुलूस की अगुआई करती है। रामसिंह तब व्यंग्य करते हुए बुदबुदाता है– शायद इन्हें इंकलाब के मायने भी मालूम न होंगे।[25] शोषित, दलित, निधन समाज की मानसिक, सामाजिक एवं संवेदना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। नाटकों में पात्रों के संवाद भी उसी परिवेश से लिए गये हैं जिस परिवेश के लिए नाटक लिखे गयें हैं। कथानक में मुख्य घटनाओं का ताना–बाना है। 8 अप्रैल, 1985 को प्यारे लाल भवन, आई.टी.ओ, नई दिल्ली में लेखक मोहनदास नैमिशराय जी का यह चौथा नाटक मंचित हुआ है। समाज में व्याप्त विषमता तथा राजनैतिक आपाधापी के प्रति लेखक के मन में जबर्दस्त विद्रोह है। वही विद्रोह उनके नाटक में उभरा

है।[26] वहीं वीर अर्जुन समाचार पत्र में प्रकाशित समीक्षा देखें तो उसमें अदालतनामा को एक बेहतर नाटक बतलाया गया है। समाज में व्याप्त स्थितियों पर खासा व्यंग्य है। मंचीय दृष्टि से देखें तो नाटक की प्रस्तुति दर्शकों को अंत तक बांधे रहती है।[27] कुल मिलकर यही कहा जा सकता है कि नैमिशराय जी के नाटकों में कल्पना तो है, लेकिन यथार्थ से वे पात्रों को बचा नहीं पाते हैं। अधिकांश पात्र आम हैं, गरीब हैं, तिरस्कृत हैं, पीड़ित हैं। उन सबके स्वयं भीतर नाट्यकार यानी नैमिशराय जी स्वाभिमान भरते हैं। उन्हें संघर्ष करना सिखलाते हैं। हिन्दी दलित साहित्य के प्रमुख स्तम्भ मोहनदास नैमिशराय जी की रचनात्मकता का क्षेत्र साहित्य के साथ–साथ मंचीय नाटक, रेडियो नाटक, एकांकी, डाक्यूमेंटरी, फिल्म भी रहा है। इन क्षेत्रों के साथी बखूबी जानते हैं कि उन्होंने लेखक के साथ निर्देशन, अभिनेता तथा निर्माता की भूमिका भी शिद्दत के साथ निभाई है। 'स्वयं नैमिशराय जी साप्ताहिक हिन्दुस्तान में अपने साक्षात्कार में कहते हैं कि थियेटर फैशन नहीं, उसे जन आंदोलन से जुड़ना चाहिए। [29]

संदर्भ–

1. हिन्दी लोक–नाट्य का शैली–शिल्प, डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ–69
2. दलित पत्रकारिता, भाग–2, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ–111

3. मेरठ जनपद की परिगणित जातियों के लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. देवी सिंह, पृष्ठ–301

4. वही, पृष्ठ–302

5. रंगमंच और स्वाधीनता आंदोलन, पृष्ठ–117

6. दलित पत्रकारिता भाग–2, पृष्ठ–116

7. वही, पृष्ठ–115

8. प्रताप सहगल, विष्णु प्रभाकर के नाटक, ध्वनि नाटक : कुछ मूल्य कुछ प्रयोग, संचेतना पृष्ठ–175

9. दलित पत्रकारिता भाग–2, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ–116

10. संवेद–2, अगस्त, 1992, पृष्ठ–44

11. लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृष्ठ–57

12. वही, पृष्ठ–58

13. दलित पत्रकारिता भाग–2, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ–117

14. वही, पृष्ठ–122

15. वही, पृष्ठ–126

16. वही, पृष्ठ–127

17. हिन्दी रेडियो नाटक, मोहनदास नैमिशराय, दो शब्द

18. वही

19. वही

20. वही

21. वही, पृष्ठ–

22. वही, पृष्ठ–96

23. वही, पृष्ठ–113

24. उजाले की ओर, मोहनदास नैमिशराय, दो शब्द

25. अदालतनामा, मोहनदास नैमिशराय, पुष्ठ–7

26. आजकल, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, जुलाई, 1985

27. दैनिक वीर अर्जुन, 11 अप्रेल 1985

28. डॉ. सुधीर सागर, हिन्दी सिनेमा, टीवी और नाटको में दलित, लोकमित्र प्रकाशन दिल्ली–92

——00——

JETIR